



शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मि समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)

3049-2890 (Print)

IIFS Impact Factor-4.0

Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026

Page No- 357-362

DOI : 10.71037/Shodhaamrit.v3i1.47

©2026 Shodhaamrit

<https://shodhaamrit.gyanvividha.com>

Author's :

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़.

Corresponding Author :

डॉ. देवेन्द्र सिंह राजपूत

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़.

भारतीय दर्शन की विविध प्रवृत्तियाँ

शोधसारांश : भारतीय ज्ञान परम्परा मानवीय बौद्धिकता, अनुभव और आध्यात्मिक चेतना की अखण्ड एवं समन्वित परम्परा है, जो विविध विद्याओं, ग्रन्थों, सिद्धान्तों और विचारधाराओं से पुष्ट होती रही है। प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय दर्शन की विविध प्रवृत्तियों का विवेचन भारतीय चिंतन परंपरा के सातत्य में किया गया है। भारतीय दृष्टि में दर्शन केवल बौद्धिक विमर्श नहीं, बल्कि जीवन के सत्य और तत्त्व की अनुभूति का साधन है जिसमें व्यवहारिकता है। 'दर्शन' वस्तुओं के मूल एवं सत्यस्वरूप को प्रकाशित करने वाला शास्त्र है। अतः भारतीय दार्शनिक परम्परा में ज्ञान और साधना का समन्वय दिखाई देता है, जहाँ तात्त्विक चिन्तन आध्यात्मिक अनुभूति तथा जीवन-परिष्कार से सम्बद्ध होकर मनुष्य को सत्य और प्रकाश की ओर उन्मुख करता है।

कुंजी शब्द : अविच्छिन्नता, मोक्ष, व्यावहारिकता, पारमार्थिकता, अभेद दृष्टि, ज्ञान केन्द्रितता, विचार-स्वातंत्र्य, सहिष्णुता।

1. भूमिका : भारतीय ज्ञान परम्परा में मानवीय बौद्धिकता एवं अनुभव की एक समन्वित परम्परा एवं निरन्तरता है।¹ जो विभिन्न क्षेत्रों के विचारकों रचनाओं एवं सिद्धान्तों से पुष्ट है। यहाँ अनेक विद्याओं में शास्त्र गढ़े गये यथा दर्शन, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, तर्कशास्त्र, खगोलशास्त्र, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, रसायनशास्त्र, कृषि-शास्त्र आदि जो इस परम्परा को परिपुष्ट करते हैं। यहाँ संरचना की सिद्धान्तीय पद्धति एवं मूर्ततत्त्वों की विवेचना मूल रूप से निहित है।² मूल रूप से बीजतत्त्व में निहित विशेष स्वरूप का प्रस्फुटन इस ज्ञान परम्परा की विशेषता है। इसी निरन्तर सनातन प्रवाह में ज्ञान के प्रमुख स्रोत के रूप में दर्शनशास्त्र को देखा जाता है। जहाँ ग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ भाष्य, टीकाएँ, संग्रहग्रन्थों की सुदीर्घ परम्परा एवं समन्वित दृष्टिकोण दृष्टव्य है।

चूँकि भारतीय ज्ञान परम्परा में दर्शन को एक शास्त्र कहा गया है। शास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति दो धातुओं से मानी गयी है शास्- आज्ञा देना या शंस् - प्रकट करना। दर्शन शंसन अर्थ में है अर्थात् वह शास्त्र जो वस्तुओं के मूल, सत्यस्वरूप को प्रकट करता है।³ इसीलिये दर्शनशास्त्र वस्तुतः है।⁴

दर्शन के पर्याय फिलासफी (Philosophy) शब्द के अर्थ विद्या का प्रेम या विद्यानुराग के विपरीत भारतीय चिन्तकों की प्रवृत्ति अत्यन्त व्यापक अर्थ में है। दर्शन चिन्तन-मनन से प्राप्त वह अन्तर्दृष्टि है जो इस जगत् एवं इसकी सत्ता के रहस्यों को खोजने की चेष्टा करती है। पश्चिम की भांति यहाँ दर्शन की उत्पत्ति आश्चर्य व विस्मय से न होकर त्रिविध दुःखों से मुक्ति पाने व परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए हुई है। इस प्रकार भारतीय दार्शनिक दृष्टि व्यावहारिक, लोकोपकारिणी, सुव्यवस्थित तथा सर्वाङ्गीण है।⁵

भेद से अभेद की ओर जाने की प्रवृत्ति होने के कारण भारतीय दार्शनिक केवल बौद्धिक चिन्तन से संतुष्ट नहीं होता बल्कि यह आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा तत्त्व की अनुभूति करता है।⁶ भारत के लिए दर्शन केवल चिन्तन-सरणी नहीं अपितु जीवन-सरणी भी है। यहाँ प्रत्येक दर्शन धर्म है व प्रत्येक धर्म का दार्शनिक आधार है यहाँ दार्शनिक जीवन के रहस्य को जानने के लिए एक गम्भीर आन्तरिक प्रेरणा से प्रकोदित होते हैं, वे तीव्र आध्यात्मिक साधना में व्यग्र रहते हैं और अपने जीवन को स्थानान्तरित कर प्रकाश का दर्शन करते हैं।

2. भारतीय दर्शन की विभिन्न प्रवृत्तियाँ : वैदिककाल से चली आ रही इस परम्परा में सहिष्णुता व समन्वयता की दृष्टि के कारण समय-समय पर ऋषियों, विद्वानों द्वारा इसे पोषित व संवर्धित किया गया है। अब यहाँ ज्ञान परम्परा की दृष्टि से भारतीय दर्शन की विभिन्न प्रवृत्तियों, विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है:

2.1 सातत्य:- सुदूर वैदिककाल से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित यह धारा का अपने अतीत से अद्भुत तारतम्य है। यथापाश्चात्य दार्शनिक परम्परा आज अपने मूल से विच्छिन्न हो चुकी है जो कि आदर्शवाद से आज मार्क्सवाद पर जा टिकी है। भारतीय दर्शन की धारा उस पुण्यशिला गंगा के समान है, जो अनेक क्षुद्र नद तथा विपुलकाय नदियों के जल में परिपुष्ट होती हुई शुष्कस्थानों को जलाप्लावित तथा क्षेत्रों को शस्यसम्पन्न बनाती हुई अपने निश्चित गन्तव्य स्थान की ओर समभाव से सदैव बहती रहती है।⁷ भारतीय दार्शनिक विचारों में इतनी विशुद्धता व प्रकृष्टता थी की अन्य संस्कृतियों, धर्मों के सम्पर्क में आने पर भी इन विचारों में विचलन नहीं हुआ।

2.2 बंधन (दुःखों) से मुक्ति:- भारतीय दार्शनिकों ने संसार को दुःखमय मानते हुए दुःख का स्वरूप, दुःख का कारण जानने की चेष्टा करते हुए निरोध का मार्ग बताते हैं जिसे मोक्ष कहा गया है। इसी क्रम में अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का विकास हुआ है। चार्वाक को छोड़कर प्रत्येक भारतीय दार्शनिक मोक्ष (दुःख निवृत्ति) को परम लक्ष्य मानता है।

व्यावहारिक होने के कारण भारतीय दर्शनों में आत्मा, ईश्वर, मोक्ष, आदि आध्यात्मिक तत्त्वों के अतिरिक्त मानव के बंधन, दुःख, पुरुषार्थ एवं नैतिक उत्थान पर बल दिया है। बौद्ध एवं सांख्य सम्प्रदाय दुःखों के निवारण के उत्तम उदाहरण हैं 'दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतुः'।⁸

जैन-दर्शन के अनुसार अनन्त चतुष्टय सम्पन्न जीव (आत्मा) का जब कर्म-पुद्गलों को संयोग होता है तो जीव बंधन में आ जाता है। आत्मा की ओर कर्म-पुद्गलों का प्रवाह ही बंधन का कारण है। न्याय-वैशेषिक के अनुसार बंधन का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण आत्मा, शरीर इन्द्रिय या मन से अपना पार्थक्य नहीं समझती। आत्मा द्वारा शरीर, इन्द्रिय व मन को अपना अंग समझ लेना ही बंधन है। अद्वैत वेदान्त भी अज्ञान या भ्रम को ही बंधन का कारण मानता है। अविद्या, माया, भ्रम या अज्ञान के कारण आत्मा का मन व शरीर में अपनापन समझना ही बंधन है।

इस प्रकार संसार में व्याप्त दुःख को भारतीय दार्शनिकों ने स्वीकारा और अज्ञान, अविवेक, भ्रम को बंधन का कारण माना एवं उसके निवारण के उपाय बताये हैं। बौद्ध-दर्शन में मोक्ष को निर्वाण कहा है जिसका अर्थ है 'बुझ जाना' अर्थात् 'दुःखों का अन्त हो जाना'। धम्मपद में लिखा है- निब्बानं परमं सुखम्।⁹

2.3 मोक्ष मार्ग की सम्यक विवेचना : जैन-दर्शन में मोक्ष प्राप्ति - सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन व सम्यक् चरित्र - त्रिरत्नों द्वारा होती है - 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'¹⁰ न्याय-वैशेषिक में मोक्ष को दुःख के उच्छेद की अवस्था कहा गया है। मोक्षावस्था में आत्मा का शरीर से पृथक्करण होता है। इस अवस्था में आत्मा अचेतन रहती

है। इस अवस्था की प्राप्ति तत्त्व ज्ञान से सम्भव है -

..... तत्त्वज्ञानानिश्रेयसाधिगमः॥¹¹ न्याय-वैशेषिक में मोक्ष को 'अपवर्ग' कहा है।

सांख्यानुसार तीन प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाना मोक्ष है। बंधन का कारण अविवेक है। 'व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानात्'¹² पुरुष का प्रकृति से अपने को प्रथक् समझना ही मोक्षानुभूति है।

मीमांसा दर्शनानुसार मोक्ष सुख- दुःख से परे की अवस्था है। अद्वैत वेदान्त में ग्रन्थ का प्रयोजन ही 'मुमुक्षत्वं' बताया है। आत्मा का ब्रह्म में विलीन हो जाना ही मोक्ष है। अद्वैत वेदान्त दो प्रकार की मुक्ति - सशरीरमुक्ति (जीवन्मुक्ति) और विदेह मुक्ति (शरीरत्यागपूर्वक मुक्ति) की चर्चा करता है।

इस प्रकार बंधन का कारण अविद्या, अज्ञान, अविवेक को मानते हुए भारतीय दार्शनिक जीवन के चरम लक्ष्य-मोक्ष प्राप्ति के विविध मार्ग बताते हैं। इन सभी के विरुद्ध चार्वाक की विचार है मरना ही मोक्ष है - मरणमेव अपवर्गः। देहच्छेदो मोक्षः।¹³ अतः सर्वप्रथम दुःख, अज्ञान आदि के स्वरूप को जानते हैं तत्पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति के उपाय बताये जाते हैं। मोक्ष की अवस्था यहाँ ज्ञानपूर्वक रहती है, बौद्ध व वेदान्ती तो इसे आनन्दावस्था कहते हैं।

2.4 जीवन के लक्ष्य का निर्धारण : इस सम्बन्ध में भारतीय परंपरा में पुरुषार्थ की अवधारणा विवेचित है - 'पुरुषेण पुरुषे वा अर्थयते इति पुरुषार्थः'। जीवन के चार उद्देश्य माने गए हैं - धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। वैशेषिक उपस्कार भाष्य में परमपुरुषार्थ भी बताया है- 'अन्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वेन परमपुरुषार्थत्वात्'। मीमांसक स्वर्ग को, वैशेषिक- अपवर्ग को, शंकराचार्य स्वर्ग एवं अपवर्ग दोनों को परमपुरुषार्थ मानते हैं। चार्वाक के अतिरिक्त सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने मोक्ष को परमपुरुषार्थ को माना है। इस संस्कृति में मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक सर्वाङ्गीण विकास व अन्त में मुक्ति की कामना की जाती ताकि वह त्रिविध दुःखों, जन्म जन्मान्तर के चक्र से छुटकारा पा लें।

2.5 व्यावहारिकता : सभी भारतीय दार्शनिक संप्रदायों का उद्देश्य व्यावहारिक है। भारत में दर्शन का जीवन से गहरा सम्बन्ध है। दैनिक जीवन से हटकर वे किसी काल्पनिक जगत् में विचरण नहीं करते। दर्शन का उद्देश्य केवल मानसिक कौतुहल की निवृत्ति नहीं बल्कि जीवन की समस्याओं को सुलझाना है। यहाँ दर्शन मनोविनोद का साधन भी नहीं है। इस प्रकार यहाँ जीवन से अलग दर्शन की कल्पना भी सम्भव नहीं है।

प्रो. हरियाना के अनुसार - Philosophy thereby becomes a way of life not merely a way of thought.¹⁴

चार्ल्स मूर व डॉ. राधाकृष्णन भी इन विचारों से सहमत हैं - In India Philosophy is for life....¹⁵ हमारी परम्परा में लोक व शास्त्र परस्पर अन्वित हैं। इसी प्रकार दर्शनशास्त्र भी पूर्णरूपेण लोक पर घटित होता है। दर्शनशास्त्र भी मनुष्य व उसकी समस्याओं मनुष्य व इस जगत् से सम्बन्धित रहस्यात्मक तथ्यों का ही अन्वेषण करता है।

2.6 पारमौतिकता: - भारतीय दर्शनों में चार्वाक एकमात्र ऐसा सम्प्रदाय है जो केवल दृश्यमान जगत् की ही सत्ता स्वीकारता है। अन्य सभी दार्शनिक दृश्य जगत् के परे एक अदृश्य जगत् जिसे पारमौतिक कहते हैं, की सत्ता में भी विश्वास करता है।

प्रत्येक दार्शनिक की दृश्यमान जगत् के पार जाने की प्रवृत्ति (To go beyond) है। वह परमसत्ता जो इन्द्रिय गम्य नहीं है उसको जानने की ओर प्रवृत्ति है। हमारा शरीर अनेक प्रकार से काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेषादि से युक्त है। इन सब से विशुद्ध होने के पश्चात् ही उस सत्ता का अनुभव किया जा सकता है। इसलिए पहले दुःखों व बंधन का कारण बताकर उनसे मुक्ति का मार्ग बतलाया जाता है, ताकि मनुष्य उस परम ब्रह्म, शुद्ध चैतन्य आत्मा के स्वरूप का आत्मसात् कर सके।

अद्वैत वेदान्त पारमौतिक सत्ता के रूप में ब्रह्म को परम तत्त्व स्वीकारता है। ब्रह्म को आनन्दस्वरूप एवं अनिर्वचनीय माना गया है - सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।¹⁶ स्वप्रकाशत्वं चित्त्वम्।¹⁷ आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्।¹⁸ सर्व

खल्विदं ब्रह्म।¹⁹ हमारी परम्परा में उस पारभौतिक सत्ता को विश्वोत्तीर्ण कहा है। अर्थात् जिसने इस जगत को अपने पर धारण कर रखा है। वह विश्वमय भी है और विश्वोत्तीर्ण भी दोनों है। *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्* में प्रेमचन्द्र इनके बारे में कहते हैं-

चितिः स्वतंत्राविश्वासिद्धिहेतु।
स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वम् उन्मीष्यति।

इस प्रकार भारतीय मनीषियों में एक प्रवृत्ति देखी जाती है जो इस पारभौतिकता के प्रति देखी जाती है।

2.7 भेद का अतिक्रमण : भारतीय दार्शनिक दृष्टि भेद से अभेद की ओर है। दूसरे शब्दों में कहें तो स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाती है। सांख्य की तत्त्वमीमांसा में यथा पच्चीस तत्त्व स्वीकारे हैं किन्तु अन्त में एक पुरुष को ही परम सत्- त्रिगुण मुक्त सत्ता बताया है। *सर्वदर्शनसंग्रह* का आरम्भ एक भेद दृष्टि से होता है - चार्वाक जो कि कट्टर भौतिकतावादी है किन्तु अन्त अद्वैत वेदान्त पर जाकर है जहाँ अद्वैत की स्थिति है। अतः हमारी दार्शनिक परम्परा भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर है। भेद अर्थात् विविधता को दर्शाकर पुनः अन्त में अभेद को स्थापित किया है। भेद भी देखा जाय तो यहाँ उर्ध्वाधर न होकर क्षैतिज है।

2.8 ज्ञान केन्द्रितता : भारतीय संस्कृति में 'ज्ञान' केन्द्रस्थानी है। इसीलिये इसे 'ज्ञान की संस्कृति' भी कहा है। यहाँ 'वेद' का अर्थ ही ज्ञान है। उपनिषद् का अर्थ भी विद्या या ज्ञान के अर्थ में है। इसी क्रम में दर्शनशास्त्र भी परमतत्त्व के ज्ञान की बात करता है। तो इस परम्परा में ज्ञान का स्थान क्या है?

यहाँ ज्ञान को मोक्ष का साधन बताया है 'ऋते ज्ञानात्मुक्तिः'। इस ज्ञान का स्वरूप कैसा हो? अभिनवगुप्त कहते हैं - शिखरस्तज्ञानवत्।²⁰ ज्ञान ही सबमें पवित्र है - न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।²¹ वेदान्त में ज्ञान को ही ब्रह्म कहा है- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।²² गीता में श्रीकृष्ण को 'ज्ञानी' भक्त ही सर्वप्रिय है।

जैन दर्शन में 'सम्यक् ज्ञान' त्रिरत्नों में एक है जो मुक्ति के साधन हैं। न्याय-दर्शन में तत्त्वों के ज्ञान से ही निःश्रेयस की प्राप्ति बतायी है। वहाँ यथार्थप्रमा - शुद्धज्ञान, प्रमेय, प्रभाव आदि पर सम्यक् चर्चा है। ज्ञान को आत्मा का गुण व आत्मा को ज्ञान का आधार स्वीकारा है। ज्ञान को वस्तु प्रकाशक कहा है- 'अर्थ प्रकाशो बुद्धिः'।

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को ही ज्ञानस्वरूप कहा है प्रज्ञान ब्रह्म।²³ ज्ञान से ही मुक्ति मिल सकती है।

2.9 भाषा व दर्शन :- भारतीय ज्ञान परम्परा में भाषा व दर्शन का अद्भुत मिश्रण है। 'J.F. Stall ने भाषा व दर्शन को भारतीय चिन्तन परम्परा के दो महत्वपूर्ण व आधारभूत आयाम कहा है'।²⁴ परम-तत्त्व के

ज्ञान में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। ऋग्वेद में यह भाषा वाक् कही गयी है। तर्क द्वारा अपने चिन्तन को व्यवस्थित करने एवं भिन्न-भिन्न ज्ञान की तार्किक प्रस्तुति भाषा द्वारा ही दर्शन में की जाती है। भर्तृहरि ने शब्द-तत्त्व की ही दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत कर कह दिया शब्द का ही विवर्त सम्पूर्ण संसार है।²⁵

किन्तु तर्क व भाषा की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। भाषा के माध्यम से परमतत्त्व को वाणी में व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वह अनुभव से ही प्राप्त कहा गया। अष्टाध्यायी के चौदह माहेश्वर सूत्रों की ज्ञानमीमांसीय व्याख्या तो की जाती है, तंत्र-दर्शनों में स्वरोदय प्रक्रिया आदि के माध्यम से इसकी तत्त्वमीमांसीय व्याख्या भी की जाती है। इस प्रकार भाषा ज्ञानमीमांसा भी है व तत्त्वमीमांसा भी है।

2.10 विचार-स्वातंत्र्य व सहिष्णुता : प्रकृति ने इस भारतभूमि को मानव-जीवन की समग्र आवश्यक सामग्रियों से परिपूर्ण बनाकर, ऐहिक चिन्ता से निर्मुक्त कर यहाँ के मानस को स्वतंत्र व पारलौकिक चिन्तन की ओर स्वतः अग्रसर किया है। यह भूमि निसर्गतः विचार प्रधान है। विचारों की जैसी स्वतंत्रता इस देश में प्राप्त है अन्यत्र नहीं। अपने इसी समन्वयात्मक, सहिष्णुता के दृष्टिकोण के कारण सतत गंगा प्रवाह की भांति यह संस्कृति विद्यमान है।

यहाँ पर अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का निरन्तर उद्भव व विकास होता रहा, सभी प्रकार के विचारों को सम्मान की दृष्टि से देखा गया। एक ओर चार्वाक के घोर भौतिकतावाद को भी यहाँ उत्कृष्ट स्थान प्राप्त है जिसका सर्वप्रथम अध्ययन किया जाता है, दूसरी ओर वेदान्त जैसा सम्प्रदाय भी है जो भौतिक जगत को मिथ्या कहता है।

यहाँ एक ही दर्शन में अनेक सम्प्रदाय का विकास हुआ, यथा- प्रभाकर मीमांसक व भाट्ट मीमांसक एक-दूसरे से मतभेद रखते हैं। बौद्ध व जैन सम्प्रदायों में आचार्यों की लम्बी परम्परा रही। जहाँ एक ओर 'बौद्ध-वेदान्ती' उत्कट प्रत्ययवादी हैं व दूसरी ओर इसी परम्परा में न्याय-मीमांसक-घोर वस्तुवादी भी देखे जाते हैं। किन्तु यहाँ की ज्ञान परम्परा में सभी विचारों को सम्मान दिया गया। विविधता में एकता, सहिष्णुता व समन्वयता के दृष्टिकोण को अपनाया।

2.11 वैज्ञानिक दृष्टि : भारतीय दार्शनिकों की दृष्टि वैज्ञानिक भी है। शोधप्रविधि की दृष्टि से देखा जाए तो किसी भी ग्रन्थ का उद्देश्य, लक्षण व परीक्षा की जाती है। लक्षण भी अतिव्याप्ति, अव्याप्ति व असंभव इन दोषत्रय से मुक्त होना चाहिए। शास्त्रारम्भ में शास्त्र का अनुबंधचतुष्टय - 1. अधिकारी, 2. विषय, 3. सम्बन्ध और 4. प्रयोजन कहा जाता है। शास्त्रों की एक ओर दृष्टि है - पूर्वपक्ष व उत्तरपक्ष। ये दार्शनिक ग्रन्थों में बाद-विवाद के आधार हैं।

विज्ञान की भाँति दार्शनिकों की प्रवृत्ति भी यहाँ अनुसंधानात्मक रही है। किसी भी ज्ञान को अंतिम नहीं स्वीकारा फलस्वरूप विभिन्न विचारों का उद्भव हुआ।

भारतीय दर्शनों में न्याय की दृष्टि वैज्ञानिक है। वह यथार्थवाद पर टिका है, तर्क उसकी वैज्ञानिक विधि का प्रकटीकरण करता है। नव्य-न्याय भाषा व शोध प्रविधि एक वैज्ञानिक संरचना प्रदान करता है। यहाँ भाषा, वाक्य, पद, प्रमाणों, ज्ञान निरूपण की विधियों का स्वरूप वैज्ञानिक है।

2.12 कर्म-सिद्धान्त : वेद विरोधी होने के कारण चार्वाक के अतिरिक्त सभी सम्प्रदाय कर्म-व्यवस्था को मानते हैं। कर्म-नियम के अधीन ही विश्व की व्यवस्था निहित है क्योंकि पुनर्जन्म का कारण कर्म ही है। कर्म तीन प्रकार के माने हैं- प्रारब्ध कर्म, संचित कर्म व संचयीमान कर्म। 'कर्म-सिद्धान्त को बौद्धों ने- 'वासना' न्याय-वैशेषिकों ने- 'अदृष्ट', मीमांसकों ने 'अपूर्व' कहा जो समयानुसार प्रकट होकर अपना फल देते हैं'²⁶

कर्मवाद के अनुसार 'कृतप्रणाश' (किए का नाश) व 'अकृतम्युपगम' (बिना किए फल प्राप्ति) नहीं होता।²⁷ हमारा वर्तमान जीवन अतीत के कर्मों का फल है तथा भविष्यत् जीवन वर्तमान जीवन के कर्मों से नियन्त्रित होगा। कर्मों के नष्ट न हो जाने तक मनुष्य बंधन में पड़ा रहता है पुनः पुनः जन्म ग्रहण करता रहता है।

यहाँ प्रत्येक दार्शनिक सत्य का संधान करता है। किन्तु वह सत्य पश्चिम की भाँति एकेश्वरवाद, एक पुस्तकाधारित व Scriptural प्रकार का नहीं होता। वह Pagan culture के अनुरूप व्यापक दृष्टिकोण वाला होता है। अनेक दार्शनिकों ने सत्य का अनुसंधान अपने ढंग से किया है। अतः यहाँ सत्य अनेक प्रकार का नहीं बल्कि उसकी व्याख्याएँ अनेक प्रकार से की है।

3. उपसंहार : भारतीय दर्शन की अनेक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यहाँ ज्ञान का उत्कृष्ट स्वरूप वर्णित है जो कि अन्यत मिलना असंभव है। वेद से आरम्भ इस परम्परा में नितान्त व्यवहारिकता है इसका दृष्टिकोण समन्वित व इसका प्रवाह गंगा की भाँति अविच्छिन्न है। दार्शनिकों का दृष्टिकोण भेद से अभेद की ओर है। ये सब विशेषताएँ ही आज ज्ञान की इस संस्कृति को संरक्षण प्रदान किए हुए हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. *Continuous and cumulative tradition*, Kapil Kapoor, Literary theory - Pg.7
2. R.K. Mishra – '*Sabda : Text and Interpretation in Indian thought*
3. शशिप्रभाकुमार: *आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय दर्शन की प्रासङ्गिकता*
4. *भारतीय दर्शन*, बलदेव उपाध्याय, पृ.सं. 5
5. वही
6. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*, हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, पृ.सं. 2
7. *भारतीय दर्शन*, बलदेव उपाध्याय, पृ. सं., 20
8. *सांख्यकारिका*, 1

9. धम्मपद, गाथा, पृ. सं. 202-203
10. तत्त्वार्थसूत्र, 1.1
11. न्यायसूत्र, 1.1
12. सांख्यकारिका, कारिका 2
13. सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. सं. 8
14. *Outlines of Indian Philosophy*, P. 29
15. *A Source book in Indian Philosophy* - By Dr. Radhakrishnam and Moore. (Edited), P. 4.
16. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/1/1
17. ब्रह्मसूत्र, भामती टीका - वी. मिश्रा, 1/1/1
18. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/6
19. छान्दोग्योपनिषद्, 3/19/1
20. अभिनवभारती टीका
21. भगवद्गीता, 4.38
22. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2.1.1
23. ऐतरेयोपनिषद्, 3/3
24. *Sanskrit Philosophy of Language in current trends in Linguistics*, J.F. Stall, Vol. 5, P. 499
25. अनादिनिधनं ब्रह्म...वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, 1
26. भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, राममूर्ति पाठक, पृ. सं. 10-11
27. वहीं, पृ. सं. 11

4. सहायक ग्रन्थ सूची

1. ऋषि, उमाशंकर शर्मा, *सर्वदर्शन संग्रह* (माधवाचार्यकृत), चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2006.
2. चतुर्वेदी, बृजमोहन, *सांख्यकारिका*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली.
3. राधाकृष्णन, एस., *भारतीय-दर्शन*, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1996.
4. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999.
5. पाठक, राजमूर्ति, *भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा*, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009.
6. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, *भारतीय-दर्शन*, शारदामंदिर प्रकाशन वाराणसी, 2001.
7. शास्त्री, डॉ. राकेश, *वेदान्तसार*, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2002.
8. अवस्थी, डॉ. शिवशंकर, *वाक्यपदीयम्*, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2001.
9. कुमार, शशिप्रभा, *आधुनिक परिपेक्ष्य में भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता*, नाग प्रकाशन दिल्ली, 1993.
10. दामोदरन, के., *भारतीय चिन्तन परम्परा*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2001.
11. Sinha, H.P., *Outlines of Indian Philosophy*
12. Stall, S. F., *Sanskrit Philosophy of Language in current trends in Linguistics*.
13. Kapoor, Kapil, *Literary theory*.

•